Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 18-05-2026, Accepted: 18-06-2026, Published: 03-07-2026
Volume 7, Issue 3, 2026, Page No. 4-10

बोल कि लब आजाद हैं तेरे: अभिव्यक्ति की आजादी और प्रेमचंद साहित्य

डॉ. अनिरुद्ध कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज(सांध्य) दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, भारत

सारांश
सोजे वतन' से गोदान तक का प्रेमचंद का तीन दशकों का साहित्य स्वतंत्रता समानता और जीवन के अधिकारों के उत्पीड़न और उनके खिलाफ संघर्ष का जीवंत दस्तावेज है। इन सभी संघर्षों में अभिव्यक्ति की आजादी की लड़ाई शामिल रही है। साम्राज्यवादी और सामंती सत्ता के गठजोड़ के उस दौर में नागरिक अधिकारों का हनन आम बात थी। इसका उल्लेख भर अभिव्यक्ति की आजादी के अधिकार पर पाबंदी लगाने की प्रक्रिया को शुरु कर देने वाला था। ऐसे में अभिव्यक्ति के हनन के प्रयासों तथा इन प्रयासों के खिलाफ कभी व्यक्तिगत कभी सामूहिक संघर्षों को रेखांकित करना अपने समय और समाज के प्रति जागरूक और संवेदनशील प्रेमचंद के लिए अनिवार्य था। प्रेमचंद ने अभिव्यक्ति की आजादी हड़पने की प्रक्रिया को बारीकी से रेखांकित किया है। वे सत्ता के विभिन्न उत्पीड़क तरीकों को सामने ला सके हैं। उन्होंने इसके खिलाफ संघर्ष को भी रेखांकित किया और कई संघर्षों को सफल होते भी दिखाया। राष्ट्रीय स्तर की बड़ी सत्ता के साथ ही परिवार जैसी छोटी सत्ता में भी अभिव्यक्ति की आजादी छीने जाने को रेखांकित करने की क्षमता ने प्रेमचंद के अभिव्यक्ति के लिए किए जाने वाले संघर्ष को पूर्णता के स्तर के करीब पहुँचा दिया है।

मूल शब्दः प्रेमचंद अभिव्यक्ति की आजादी नागरिक अधिकार स्वतंत्रता संघर्ष साम्राज्यवाद सामंतवाद सामाजिक न्याय

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार मूल अधिकारों के सुरक्षा का स्रोत है। यह अकारण नहीं है कि मानवाधिकार विरोधी सत्ता अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित या समाप्त करने की कोशिश करती है। इसलिए सभी तरह के नागरिक अधिकारों के संघर्ष अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ जाते हैं। प्रेमचंद साहित्य में पहली ही कहानी 'सांसारिक प्रेम और देशप्रेम' (१९०७) में इटली के स्वतंत्रता के अधिकार के लिए संघर्षरत मैज़िनी जनता की राजनीतिक शिक्षा के लिए अख़बार निकालना चाहता था जिससे कि वह एक प्रजातांत्रिक शासन–व्यवस्था की बुनियाद डाल सके किंतु इटली में उसे अभिव्यक्ति का अधिकार नहीं दिया गया और निर्वासित कर दिया गया। अभिव्यक्ति के अधिकार की उसकी कोशिश इटली के बाहर भी जारी रही और अंततः स्विट्जरलैंड जाकर उसने अखबार निकाला– "वह स्विट्ज़रलैंड जा रहा था कि वहाँ से एक जबर्दस्त क़ौमी अख़बार निकाले क्योंकि इटली में उसे अपने विचारों को फैलाने की इजाज़त न थी।...और साल–भर तक कुछ विश्वसनीय मित्रों की सहायता से अख़बार निकालता रहा।"[1]
भारत के स्वाधीनता संघर्ष के उभार के दौर में अभिव्यक्ति की आजादी के संघर्ष की ओर आकर्षित होना प्रेमचंद के लिए बहुत स्वाभाविक था। किंतु इसके बाद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन का उल्लेख अगले दस वर्षों तक प्रेमचंद साहित्य में नहीं मिला और लेखन की स्वतंत्रता का उल्लेख होने में तो १८ साल लग गए। यह अकारण नहीं था कि पहली ही कहानी में राजनीतिक स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार का सवाल एक साथ उठाया गया था और उसके बाद पुनः अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सवाल नियमित अंतराल पर राजनीतिक स्वतंत्रता का प्रश्न उठाने के साथ ही शुरु हुआ। पहले ही कहानी संग्रह 'सोजे वतन' (१९०८) की कहानियों में देशप्रेम के भाव को स्थान देने के कारण साम्राज्यवादी सत्ता के द्वारा लगाई गई पाबंदी ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन करने वाले सत्ता के बुनियादी चरित्र को सिद्धांत से कटु अनुभव के दायरे में ला दिया। नवाब राय खुद को प्रेमचंद के रूप में तब्दील कर लिया पर राजनीतिक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार के प्रश्नों को सीधे–सीधे अपनी कथात्मक साहित्य के माध्यम से उठाने में उन्हें एक से दो दशक लग गए। असहयोग आंदोलन के दौर में नौकरी से मुक्त होने के साहसी निर्णय के बाद राजनीतिक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार दोनों तरह के प्रश्नों में तेजी आई।
असहयोग आंदोलन के दौरान साम्राज्यवादी सरकार द्वारा अभिव्यक्ति के अधिकार पर लगाई गई पाबंदियों से गुजरे प्रेमचंद ने १९२५ में 'डिक्री के रुपये' में तमाम खतरे उठाकर भी अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले समाचार पत्र संपादक कैलास को नायक बनाकर साम्राज्यवादी सत्ता द्वारा स्वतंत्र अभिव्यक्ति को दबाने और उसके खिलाफ एक आम आदमी के संघर्ष को दिखाया है। कैलाश के सच्चे दोस्त नईम ने विष्णुपुर के रियासत में बीस हजार रुपये लेकर खून करने वाले कुँवर को निर्दोष साबित करने वाली रपट तैयार करने की कहानी उसे बता दी। नईम की रपट आने के बाद उसके मन में दोस्ती का भरोसा कायम रखने और जनता को पत्र में सच्चाई बताने का द्वंद्व उठ खड़ा हुआ– "कैलास के सामने अब एक जटिल समस्या उपस्थित हुई। अभी तक उसने इस विषय पर एक–मात्र मौन धारण कर रखा था। वह यह निश्चय न कर सकता था कि क्या लिखे? गवर्नमेंट का पक्ष लेना अपनी अंतरात्मा को पद–दलित करना था आत्म–स्वातंत्र्य का बलिदान करना था पर मौन रहना और भी अपमानजनक था।"[2] वैयक्तिक तथा जातीय कर्तव्य के संग्राम में अंततः संपादक का जातीय कर्तव्य विजयी रहा। कैलास ने शासन व्यवस्था के अनुत्तरदायित्व और उसके कर्मचारियों की स्वार्थ–लोलुपता अयोग्यता और दुर्बलता का कच्चा चिट्ठा खोलने का निश्चय किया– "मैं इस रहस्य का यथार्थ स्वरूप दिखा दूँगा; शासन के अनुत्तरदायित्व को जनता के सामने खोलकर रख दूँगा; शासन–विभाग के कर्मचारियों की स्वार्थ–लोलुपता का नमूना दिखा दूँगा; दुनिया को दिखा दूँगा कि सरकार किनकी आँखों से देखती है किनके कानों से सुनती है। उसकी अक्षमता उसकी अयोग्यता और उसकी दुर्बलता को प्रमाणित करने का इससे बढ़कर और कौन–सा उदाहरण मिल सकता है? नईम मेरा मित्र है तो हो; जाति के सामने वह कोई चीज़ नहीं है। उसकी हानि के भय से मैं राष्ट्रीय कर्तव्य से क्यों मुँह फेरूँ अपनी आत्मा को क्यों दूषित करूँ अपनी स्वाधीनता को क्यों कलंकित करूँ? आह प्राणों से प्रिय नईम! मुझे क्षमा करना आज तुम–जैसे मित्र–रत्न को मैं अपने कर्तव्य की वेदी का बलि चढ़ाता हूँ। मगर तुम्हारी जगह

अगर मेरा पुत्र होता तो उसे भी इसी कर्तव्य की बलि–वेदी पर भेंट कर देता!"[3] कैलास को उसकी अभिव्यक्ति की कीमत नईम द्वारा दायर मानहानि के मुकद्दमे के रूप में चुकानी पड़ी। साम्राज्यवादी सत्ता के अधिकारी के ख़िलाफ न्यायिक प्रक्रिया का बुनियादी अधिकार भी कैलाश को नहीं दिया गया। इस लड़ाई में कैलास अकेला पड़ गया। "न्याय के प्रमुा संरक्षकों (वकील बैरिस्टरों) ने किसी अज्ञात कारण से उसकी पैरवी करना अस्वीकार किया।"[4] नईम ने अदालत में रिश्वत या संबंधित किसी घटना का जिक्र करने से इनकार किया। उसे कैलास पर बीस हजार रुपये की डिक्री हो गई। कैलास बीस हजार रुपये की कल्पना भी नहीं कर सकता था किंतु उसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा की कीमत वसूलने को गलत माना तथा अपने आत्माभिमान की भी रक्षा करने का निश्चय किया। उसने फैसला किया कि– "निर्भीक आलोचना का सेहरा तो मेरे सिर बँधा; उसका मूल्य दूसरों से क्यों वसूल करूँ? मेरा पत्र बंद हो जाए मैं पकड़कर क़ैद किया जाऊँ मेरा मकान क़ुर्क कर लिया जाए बरतन–भाड़े नीलाम हो जाएँ यह सब मुझे मंजूर है। जो कुछ सिर पड़ेगी भुगत लूँगा पर किसी के सामने हाथ न फैलाऊँगा।"[5] किंतु वर्षों से संतान की तरह पाले गए और अपने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रतीक और माध्यम बने पत्र को बंद करते हुए उसे असीम वेदना हो रही थी। साथ ही उसे अपने सर्वप्रमु कर्तव्य अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए बलिदान होने का संतोष भी था। कैलास ने अंतिम अंक के अग्रलेा में यही विचार व्यक्त करना निश्चित किया– "हमें किसी से कोई शिकायत नहीं है। हमें इस अकाल–मृत्यु का दुःख नहीं है; क्योंकि यह सौभाग्य उन्हीं को प्राप्त होता है जो अपने कर्तव्य–पथ पर अविचल रहते हैं। दुःख यही है कि हम जाति के लिए इससे अधिक बलिदान करने में समर्थन हुए।"[6]

समाचार पत्र अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के आधार स्तंभ हैं। प्रेमचंद युग में यही सरकार की जनविरोधी नीतियों की आलोचना करने के सबसे ताकतवर माध्यम थे। सरकार द्वारा इसे बंद करने के माध्यम से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगातार पाबंदी लगाने की चेष्टा कर रही थी इसलिए प्रेमचंद के कथा साहित्य में विभिन्न रूपों में निरंतर आबारों से जुड़े लोगों के सत्ता द्वारा उत्पीड़ित करने का जिक्र मिलता है। 'गबन' में जग्गो के माध्यम से समाचार पत्र संबंधी सरकार द्वारा पैदा की गई आम धारणा और उसके पीछे अभिव्यक्ति के हनन की कार्यवाइयों की बहुलता को पहचाना जा सकता है। जग्गो ने देवीदीन और रमानाथ से कहा– "आबार वाले दंगा मचाते हैं और ग़रीबों को जेहल ले जाते हैं। आज बीस साल से देा रही हूं। वहां जो आता–जाता है पकड़ लिया जाता है। तलाशी तो आए दिन हुआ करती है।"[7]

आबार की ही तरह गैर सरकारी तौर पर आयोजित सार्वजनिक सभाएँ भी साम्राज्यवादी और मानवाधिकार विरोधी सरकारों को नागवार गुजरती है इसलिए वे न केवल सभाओं पर पाबंदी लगाते हैं बल्कि उसमें शामिल होने वाले लोगों पर पुलिसिया कार्यवाई भी करते हैं। यह कार्यवाई धमकाने बेघर कराने कैद करने तथा प्रताड़ित करने की होती है। 'वियोग और मिलाप' (१९१७) में होमरूल आंदोलन की सभा सरकार को नागवार लगती है। दयानाथ के होमरूल सभा के मंत्री बनाए जाने पर पुलिस कोतवाल ने दो थानेदार और दर्जन भर कांस्टेबलों के साथ उनके घर पहुंचकर जानकीनाथ से कहा– "आज लोगों ने 'होमरूल' का बड़े जोर–शोर के साथ जलसा किया है। गवर्नमेंट के ख़िलाफ ख़ूब ग़लतबयानियाँ की गई हैं। बाबू दयानाथ उसके सेक्रेटरी मुकर्रर हुए हैं। उनसे हाजिरीने–जलसा के नाम दरियाफ्त करना है और यह दोस्ताना सलाह भी देनी है कि होशियार हो जाएँ। ऐसा न हो कि हमको उनके साथ ज़ाब्ते का बर्ताव करना पड़े।"[8] साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था के आतंक के परिणामस्वरूप पिता द्वारा स्वराज्य के काम से हाथ न खींचने वाले पुत्र दयानाथ को घर से बाहर निकाल दिया गया– "अपने दरवाज़े पर पुलिस को रोज खड़े देखना मेरी सहनशक्ति के बाहर है। तुम्हें यदि राजनीतिक फुलझड़ियाँ छोड़नी हैं तो मेरे घर से दूर छोड़ो इसमें आग न लगाओ।"[9] अधिकारी वर्ग इससे बेहद प्रसन्न हुए– 'एक दिन कलेक्टर साहब का एक पत्र आया। उन्होंने जानकीनाथ को इस राजभक्ति पर बधाई दी थी।'[10]

शासन व्यवस्था का भय और उनके कृपा की आकांक्षा समाज के अधिकांश लोगों को अभिव्यक्ति के अधिकार के हनन में सहयोग करने पर मजबूर कर देती है। तिलक के कानपुर में ठहराने और भाषण के लिए स्थान का प्रबंध करने में दयानाथ अंततः असफल रहे– "बेचारे दयानाथ नगर–भर के बड़े–बड़े आदमियों से मिलते फिरे। सभी के हाथ–पैर जोड़े परंतु कोई भी लोकमान्य तिलक को ठहराने के लिए तैयार न हुआ। साफ़–साफ़ इंकार किसी ने भी नहीं किया। देशभक्ति का और देशभक्त होने का दावा किसी ने भी नहीं छोड़ा। हाँ घर खाली नहीं थे। कुछ मेहमान आ गए थे या भावज या साली बीमार थी। खैर बड़ी दौड़–धूप के बाद लोकमान्य तिलक के ठहराने के लिए तो स्थान मिल गया परंतु अब व्यायान के लिए स्थान की फ़िक्र थी छोटे–मोटे स्थान से काम न चलता। बड़े स्थान कोई देता नहीं था। श्रीराम मंदिर के ट्रस्टी अपना अहाता देने के लिए राजी नहीं हुए। बड़ी मस्जिद की ज़मीन नहीं मिली।" [11]

असहयोग आंदोलन से संबद्धता ने प्रेमचंद साहित्य के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार संबंधी प्रश्नों के चित्रण के तेवर बदल दिए। 'विश्वास' (१९२५) में साम्राज्यवादी सत्ता के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में सीधा हस्तक्षेप करने का उल्लेा है जहाँ जिलाधिकारी ने महँगाई के मुद्दे पर हो रही सरकार विरोधी शांतिपूर्ण जनसभा को सशस्त्र सैनिकों द्वारा बंद करवा दिया। बंबई के लोग अनाज पर कर लगाने के सरकारी आदेश का विरोध करने के लिए आप्टे के सभापतित्व में आम सभा करने के लिए जमा हुए। आप्टे ने सभा के पास स्थित मिस जोशी के भवन में रईसों और जिलाधिकारी को मेवे बिस्कुट और शराब उड़ाते तथा रंगरलियां मनाते देखा तो उनके वक्तृता में उत्तेजना आ गई– "इधर तो हमारे भाई दाने–दाने को मुहताज हो रहे हैं उधर अनाज पर कर लगाया जा रहा है केवल इसलिए कि राज कर्मचारियों के हलुवे पूरी में कमी न हो।...संसार में ऐसा और कौन देश होगा जहाँ प्रजा तो भूखी मरती हो और प्रधान कर्मचारी अपनी प्रेम–क्रीड़ाओं में मग्न हों जहाँ स्त्रियाँ गलियों में ठोकरें खाती फिरती हों और अध्यापिकाओं का वेष धारण करने वाली वेश्याएँ आमोद–प्रमोद के नशे में चूर हों..."[12] जिलाधिकारी मिस्टर जौहरी को यह आलोचना नागवार गुजरी। उनके इशारे पर अधिकारी ने सशस्त्र सैनिकों को हुक्म दिया कि– "सभा भंग कर दो नेताओं को पकड़ लो कोई न जाने पाए। यह विद्रोहात्मक व्यायान है।"[13] जिलाधिकारी ने आप्टे को गिरफ्तार करवाकर काला पानी भेजने या राजद्रोह का मुकद्दमा चलाकर दस साल तक कैद करने की भी योजना बनायी।

नागरिक अधिकार विरोधी सत्ता के संरक्षण में पल रही शैक्षिक और न्यायिक व्यवस्था भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करने वाली बन जाती है। 'भाड़े का टट्टू' (१९२५) में रमेश ने आगरे के कॉलेज का प्राचार्य का विद्यार्थियों को राजनीति से अलग राने के सिद्धांत का खुल्लम खुल्ला विरोध करते हुए छात्रों के राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सेदारी और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का समर्थन किया– "अगर किसी को राजनीतिक जलसों में शामिल होना चाहिए तो विद्यार्थी को। यह भी उसकी शिक्षा का एक अंग है। अन्य देशों में छात्रों ने युगांतर उपस्थित कर दिया है तो इस देश में क्यों उनकी ज़बान बंद की जाती है?"[14] इसका परिणाम हुआ कि उसे वर्ष भर के भीतर ही कॉलेज से इस्तीफा देना पड़ा। शैक्षिक विभाग की तरह न्यायिक विभाग भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करने वाला था। रमेश की निर्भीकता से की

गई बहस और वकालत हाकिम या जज को गुस्ताी मालूम होती है और जिला जज तो उलझ पड़ने पर उसकी सनद छीन लेता है।[15] न्यायिक और शैक्षिक संस्थानों का अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता विरोधी रवैया रमेश की आजीविका तो छीन लेता है किंतु उसके अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संघर्ष को रोक नहीं पाता है। वह आबारों के सहारे सरकार विरोधी विचारों की अभिव्यक्ति के दायरे को विस्तृत कर लेता है। सरकार की गलत नीतियों की कड़ी आलोचना का स्रोत बनने वाली उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का उपयोग सत्तासीन अधिकारियों को पसंद नहीं आई इसलिए उसपर पाबंदी लगाने के लिए साजिशें रची जाने लगी। रमेश के मजिस्ट्रेट मित्र यशवंत ने सरकारी मंशा समझते हुए उसे कलम की धार कम करने की मिन्नत की। मगर सरकार की अनीति ज्यों–ज्यों बढ़ती जाती थी रमेश की धार उतनी ही तेज होती जाती थी। सरकार और खुफिया पुलिस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर जितनी अधिक पाबंदियाँ लगा रही थी रमेश उसके ाखिलाफ उतना ही जोरदार संघर्ष कर रहा था– "कहीं आबारों का मुँह बंद किया जाता था कहीं प्रजा के नेताओं का। खुफ़िया–पुलिस ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए हुक्कामों के कुछ इस तरह कान भरे कि उन्हें हर एक स्वतंत्र विचार राने वाला आदमी खूनी और कातिल नज़र आता था। रमेश यह अंधेर देकर चुप बैठने वाला मनुष्य न था। ज्यों–ज्यों अधिकारियों की निरंकुशता बढ़ती थी त्यों–त्यों उसका भी जोश बढ़ता जाता था। रोज़ कहीं–न–कहीं व्यायान देता था और उसके प्राय: सभी व्यायान विद्रोहात्मक भावों से भरे होते थे।...रमेश ने मनोभावों को गुप्त राना सीखा ही न था। प्रजा का नेता बनकर जेल और फाँसी से डरना क्या! जो आफत आनी हो आवे। वह सब कुछ सहने को तैयार बैठा था। अधिकारियों की आँाों में भी वही सबसे ज़्यादा गड़ा हुआ था।"[16]

विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जन जागृति का माध्यम है इसलिए यह साम्राज्यवादी या तानाशाही शासन व्यवस्था को कभी नहीं सुहाती है। प्रेमचंद साहित्य अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सहन नहीं कर सकने वाली साम्राज्यवादी सत्ता द्वारा विरोधी आवाज को दबाने के लिए पुलिस द्वारा डकैती के झूठे मुकद्दमे गढ़कर स्वतंत्र अभिव्यक्ति करने वाले व्यक्ति को कैद कर उसका मुँह बंद कर देने की आसान तरकीब निकालने का उल्लो करता है। 'भाड़े का टट्टु' में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर किसी तरह की पाबंदी स्वीकार न करने वाले रमेश को अधिकारियों ने डकैती के झूठे मुकद्दमे में फँसा दिया। वह उस दिन जिला जज यशवंत के साथ था। मामला यशवंत की अदालत में पहुंचा। मगर यशवंत ने उस रात का जिक्र न किया और रमेश को ७ साल की सज़ा सुना दी।[17] 'माता का ह्रदय' (१९२५) के आत्मानंद को भी पुलिस उसकी वक्तृताओं और लेखों के कारण गिरफ्तार कर डाके के झूठे मुकद्दमें में फँसाकर सज़ा दिलवाती है– "आत्मानंद के सेवा–कार्य ने उसकी वक्तृताओं ने और उसके राजनीतिक लेखों ने उसे सरकारी कर्मचारियों की नज़रों में चढ़ा दिया था। सारा पुलिस विभाग नीचे से ऊपर तक उससे सतर्क रहता था सब की निगाहें उस पर लगी रहती थीं। आाि ज़िले में एक भयंकर डाके ने उन्हें इच्छित अवसर प्रदान कर दिया। आत्मानंद के घर की तलाशी हुई कुछ पत्र और लेा मिले जिन्हें पुलिस ने डाके का बीजक सिद्ध किया। लगभग २० युवकों की एक टोली फाँस ली गई। आत्मानंद इनका मुाया ठहराया गया।...सारे अभियुक्तों को सजाएँ दे दी गईं। आत्मानंद को सबसे कठोर दंड मिला। ८ वर्ष का कठिन कारावास!"[18]

साम्राज्यवादी सत्ता तंत्र स्वयं को सुरक्षित राने के लिए ही अभिव्यक्ति के अधिकारों का दमन करती थी। प्रेमचंद वैचारिक लेान में साम्राज्यवादी सत्ता द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार का हनन और उसके पीछे की मंशा जाहिर करते हैं– "फिल्मों पर रोक लगाई जा रही है। तार की खबरों को सेंसर किया जा रहा है।[19] समाचार पत्रों को एकदम बंद कर देने से फिर कहीं से विरोध की आवाज भी न आवेगी। सरकार अपने दिल में संतोष कर सकती है कि अब किसी को भी कोई शिकायत नहीं रही।"[20] साम्राज्यवादी सरकार की पुलिस व्यवस्था का उद्देश्य कानून व्यवस्था की स्थापना करने के बजाय उसके संभावित खतरों का मूलोच्छेद करना था इसलिए सरकार समाचार पत्र में उत्तेजना पैदा करने वाले लेा निकलने का आरोप लगाकर पुलिस और अधिकारियों को किसी भी समाचार पत्र को बंद करने का अधिकार दे रही थी। प्रेमचंद इसके खतरे स्पष्ट करते हैं– "सरकार ने समाचार पत्रों के लिए एक नया दंड विधान सोच निकाला। क्रांतिकारियों की अमानुषीय लीलाओं को रोकने के लिए यही उपाय सबसे सरल समझा गया है। सरकार का कथन है कि समाचार पत्रों में उत्तेजना पैदा करने वाले लेख निकलते हैं। हत्याकारियों की तस्वीरें छपती हैं और अप्रत्यक्ष रूप से उनकी प्रशंसा की जाती है। यदि ऐसे समाचार पत्र हैं और इसमें सन्देह नहीं की हैं तो उनके साथ कानूनी बर्ताव होना चाहिए। इस वक्त भी तो कानून मौजूद हैं। उसके द्वारा सरकार ऐसे पत्रों की जबान बंद कर सकती है। उनकी हस्ती मिटा सकती है लेकिन एक नया कानून बनाकर अधिकारियों को ये अधिकार दे देना कि वे जिस पत्र को चाहें कुचल डालें और सरकारी नीति की निष्पक्ष आलोचना करने के लिए भी पत्रों को दंड दे सकें खतरे की बात है।"[21] 'पत्नी से पति' (१९३०) में अंग्रेज–हिंदुस्तानी और विलायती का कट्टर भक्त मिस्टर सेठ अपनी स्त्री गोदावरी को सरकार के करतब समझाता है जो अपनी सत्ता को चुनौती देने वाली विचारधारा को चोर और डाकुओं से ज्यादा खतरनाक समझती है और उसके अभिव्यक्ति के अधिकार पर कड़ी चौकसी राती है। उसने कहा– "रोज़ आबारों में देाती हो फिर भी मुझसे पूछती हो। एक काँग्रेस का आदमी प्लेटफार्म पर बोलने खड़ा होता है तो बीसियों सादे कपड़ेवाले पुलिस अफ़सर उसकी रिपोर्ट लेने बैठते हैं। काँग्रेस के सर्गनाओं के पीछे कई–कई मुाबिर लगा दिए जाते हैं जिनका काम यही है कि उन पर कड़ी निगाह रों। चोरों के साथ तो इतनी सती कभी नहीं की जाती। इसीलिए हज़ारों चोरियाँ और डाके और खून रोज़ होते रहते हैं। किसी का कुछ पता नहीं चलता। न पुलिस इसकी परवाह करती है।...सरकार को चोरों से भय नहीं। चोर सरकार पर चोट नहीं करता। काँग्रेस सरकार के अाितयार पर हमला करती है इसीलिए सरकार भी अपनी रक्षा के लिए अपने अख़्तियारों से काम लेती है।"[22]

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन साम्राज्यवादी और तानाशाह सत्ता की आत्मरक्षा का साधन है इसलिए राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष के दौरान ऐसे सत्ता–तंत्र आम तौर पर अभिव्यक्ति का हनन करने वाला बन जाता है। राजनीतिक स्वतंत्रता के अधिकार का संघर्ष करने वालों के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार के लिए संघर्ष करना भी जरूरी हो जाता है। 'शराब की दुकान' (१९३०) में शराब की दुकान पर पिकेटिंग करने गए कांग्रेसी कार्यकर्ता जयराम को शराबी भाइयों से बातचीत करने और समझाने से पुलिस ने रोका तो उसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पाबंदी लगाने का भी विरोध किया– "और मैं आपसे कहता हूँ कि आप मुझे अपना काम करने दीजिए। मेरे बहुत से भाई यहाँ ज़मा हैं और मुझे उनसे बातचीत करने का उतना ही हक़ है जितना आपको।"[23] अभिव्यक्ति और विचार विनिमय के हक पर नाहक लगाई जा रही पाबंदी ने शराबी चौधरी को तुरंत ही शराब के नुकसान के साथ ही सरकार की नीयत भी समझा दिया। उसने तुरंत शराब को हमेशा के लिए छोड़ने का फैसला कर लिया– "देखा कल्लू थानेदार कितना बिगड़ रहा था। सरकार चाहती है कि हम लोग खूब शराब पियें और कोई हमें समझाने न पावे। शराब का पैसा भी तो सरकार ही में जाता है?...तो फिर क्या सलाह है? है तो बुरी चीज़?...अच्छा तो यह लो। आज से अगर पिए तो दोगला!"[24] 'जेल' (१९३१) में सरकार स्त्रियों को उद्दंड

भाषण देने का आरोप लगाकर कैद कर रही थी। क्षमा देवी का जेल में आना अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करने की पुलिसिया कार्यवाई का परिणाम था– "उन्होंने एक उद्दंड व्यायान देने के अपराध में साल–भर की सज़ा पाई थी।"[25] भाषण सभा जुलूस आदि सरकार की नीतियों का विरोध की अभिव्यक्ति के साधन हैं। साम्राज्यवादी और तानाशाही सत्ता किसानों के पुलिस बर्बरता के प्रतिरोध का प्रतीकात्मक जुलूस निकालने पर भी निषेध लगा रही थी। भैरोगंज में जबर्दस्ती लगान वसूलने गई पुलिस ने लूटमार कर आधे गाँव का कत्लेआम कर दिया और लोगों को विरोध प्रकट करने का मौका भी नहीं दिया– "अगर आस–पास के गावों के लोग जमा होकर उनके साथ रो लेते तो ग़रीबों के आँसू पुँछ जाते; किंतु पुलिस ने उस गाँव की नाकेबंदी कर रखी थी चारों सीमाओं पर पहरे बिठा दिए गए थे। यह घाव पर नमक था। मारते भी हो और रोने भी नहीं देते।"[26] प्रेमचंद साहित्य रेखांकित करता है कि जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार के हनन की चरम अवस्था अभिव्यक्ति के अधिकार पर पूर्ण प्रतिबंध के रूप में भी प्रकट होती है। मगर १९३१ के आसपास के दौर में अधिकांश भारतीय जनता की चेतना अपनी अभिव्यक्ति और स्वतंत्रता के अधिकार के लिए प्राण हथेली पर लेकर तमाम प्रतिबंधों का प्रतिरोध करने के लिए तैयार हो चुकी थी। मृदुला ने क्षमा को गाँववालों के पुलिसिया नाकेबंदी के खिलाफ प्रदर्शन करने तथा शहर वालों के उसमें शामिल होने की घटना सुनाई– "आख़िर लोगों ने लाशें उठाई और शहरवालों को अपनी विपत्ति की कथा सुनाने चले। इस हँगामे की ख़बरें पहले ही शहर में पहुँच गई थीं। इन लाशों को देखकर जनता उत्तेजित हो गई और जब पुलिस के अध्यक्ष ने इन लाशों का जुलूस निकालने की अनुमति न दी तो लोग और भी झल्लाए।...जब सरकार की आज्ञा के विरुद्ध जनाजा चला तो पचास हज़ार आदमी साथ थे। उधर पाँच सौ सशस्त्र पुलिस रास्ता रोके ाड़ी थी...घंटे–भर बराबर फैर होते रहे पूरे घंटे–भर तक! कितने मरे कितने घायल हुए कौन जानता है।"[27]

बीसवीं सदी के तीसरे दशक तक राजनीतिक स्वतंत्रता और साथ ही साथ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का संघर्ष और साम्राज्यवादी सत्ता द्वारा उसके दमन की कोशिश तीव्रतर होती जा रही थी। इसलिए २५ से ३६ के बीच प्रेमचंद के कथा साहित्य में सत्ता द्वारा अभिव्यक्ति पर आयद पाबंदियाँ और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का संघर्ष बार–बार दर्ज हुआ है। 'कातिल' (१९३३) के धर्मवीर की माँ के पति को भी भाषण देने के कारण गिरफ्तार होकर जिंदगी गँवानी पड़ी। 'विधवा आज़ादी की लड़ाई में दिलों–जान से शरीक थी। दस साल पहले उसके पति ने एक राजद्रोहात्मक भाषण देने के अपराध में सज़ा पाई थी। जेल में उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया और जेल ही में उसका स्वर्गवास हो गया।'[28] मानवाधिकार हनन की इस कार्यवाई ने धर्मवीर और उसकी माँ को सत्ता विरोधी राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष में शामिल कर दिया और फिर धर्मवीर को अंग्रेजों का कट्टर दुश्मन बना दिया।

अपनी उम्र बढ़ाने की वाहिश में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार पर पाबंदी लगाने वाली मानवाधिकार विरोधी सत्ता हमेशा विदेशी ही नहीं होती। जनविरोधी तेवर वाली देशी सत्ता भी उसी क्रूरता से अपने देश वासियों के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करती है। राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्रजा के हाथों में एक हथियार की तरह बन जाता है जिसपर प्रतिबंध आरोपित करना सामंती और साम्राज्यवादी शासन तंत्र को बेहद जरूरी लगने लगता है। अभिव्यक्ति पर पाबंदियाँ लगाते समय सत्ता जनता की नागरिकता नहीं देाती है। 'कैदी' (१९३३) में रूस की जनता के अभिव्यक्ति के अधिकारों का हनन उनके देश की जारशाही ने ही किया। यूक्रेन का नया गवर्नर बनकर आए रोमनाथ ने जिन मानवाधिकारों के हनन की कार्यवाइयों की शुरुआत की उनमें अभिव्यक्ति पर पाबंदी प्रमु है– 'आते–ही–आते उसने कई संपादकों पर राजद्रोह का अभियोग चलाकर उन्हें साइबेरिया भेजवा दिया कृषकों की सभाएँ तोड़ दीं नगर की म्यूनिसिपैलिटी तोड़ दी और जब जनता ने अपना रोष प्रकट करने के लिए जलसे किए तो पुलिस से भीड़ पर गोलियाँ चलवाई जिससे कई बेगुनाहों की जान गई। मार्शल–लॉ जारी कर दिया।' [29] विदेशी संदर्भ की कहानियों के साथ ही प्रेमचंद भारतीय संदर्भ में भी विदेशी साम्राज्यवादी और देशी सामंती सत्ता के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार के लिए एक समान घातक होने को रेखांकित करते हैं। 'रियासत का दीवान(१९३४) में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार के लिए संघर्ष करने वाला मेहता का बेटा जयकृष्ण साम्राज्यवादी और सामंती दोनों सत्ता–तंत्रों के कोप का शिकार होता है। उसके परिचय की शुरुआत भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए जारी संघर्ष के दौर में साम्राज्यवादी सत्ता द्वारा अभिव्यक्ति का अधिकार के हनन का शिकार होने के साथ मिलता है– "एक बार १९३२ में कोई उग्र भाषण करने के जुर्म में ६ महीने की सज़ा काट चुका था।"[30] इसी तरह जब उसने राजा द्वारा पोलिटिकल एजेंट के खुशामद के लिए प्रजा के बुनियादी अधिकारों के व्यापक उल्लंघन की निंदा की तो अपनी तानाशाही रवैये का प्रमाण देते हुए राजा ने प्रजा के तमाम मानवाधिकारों तथा उसके अभिव्यक्ति के अधिकारों को समाप्त करने की शक्ति से उसे परिचित कराया– "तुम मेरे राज्य में विद्रोह और असंतोष के बीज नहीं बो सकते। तुम्हें अपने मुँह पर ताला लगाना होगा तुम मेरे विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाल सकते चूँ भी नहीं कर सकते... तुम्हें यहाँ ज़बान खोलने का कोई हक़ नहीं है।...मैं तुम्हें अभी जेल में बंद कर सकता हूँ।"[31] जयकृष्ण ने अपने अभिव्यक्ति के अधिकार पर लगाई गई पाबंदी का विरोध करते हुए राजा से कहा– "मैं अपनी आँखों से यह अत्याचार देखकर मौन नहीं रह सकता।...प्रत्येक विचारशील मनुष्य को अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने का हक़ है। आप वह हक़ मुझसे नहीं छीन सकते!"[32] राजा ने जयकृष्ण के पर कतरने के लिए उसके ही पिता और अपने दीवान मेहता का इस्तेमाल किया। राजा ने मेहता से कहा– "आपको तुरंत निर्णय करना पड़ेगा इस रियासत की दीवानी या लड़का। अगर दीवानी चाहते हो तो तुरंत उसे रियासत से निकाल दो और कह दो कि फिर कभी मेरी रियासत में पाँव न रो। लड़के से प्रेम है तो आज ही रियासत से निकल जाइए। आप यहाँ से कोई चीज़ नहीं ले जा सकते एक पाई की भी चीज़ नहीं। जो कुछ है वह रियासत की है। बोलिए क्या मंजूर है?"[33] सामंती सत्ता ने न केवल जयकृष्ण को उसके ही पिता द्वारा राज्य से बाहर निकलवाने का प्रबंध कर जयकृष्ण के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पाबंदी न मानने की सज़ा दी बल्कि उसकी माँ पर अपने बेटे का पक्ष लेने का आरोप लगाकर उसे भी राज्य से निकलवा दिया और पुत्र तथा स्त्री से वंचित मेहता से प्रजा के तमाम मानवाधिकारों को कुचलवाकर पोलिटिकल रेजिडेंट के स्वागत में जोरदार जलसे का आयोजन किया।[34] भारतीय रियासतों में पोलिटिकल एजेंट का दौरा के समय जनता के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार का हनन अपने चरम पर होता था। 'रंगभूमि' में पोलिटिकल रेजिडेंट क्लार्क और सोफिया के जसवंत नगर आने पर उदयपुर के शासकों ने प्रजा के असंतोष को अभिव्यक्त न होने देने का बखूबी इंतजाम किया– "सड़कों के दोनों तरफ सशस्त्र सिपाहियों की सफें खड़ी कर दी गई हैं कि प्रजा की अशांति का कोई चिन्ह भी न नजर आने पाए। सभाएँ करने की मनाही कर दी गई है।"[35]

मानवाधिकार विरोधी सत्ता की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार पर लगाई गई पाबंदियों और उसके खिलाफ मुश्किल संघर्ष का परिणाम प्रेमचंद साहित्य में अनेक बार अभिव्यक्ति का अधिकार सुनिश्चित होने के रूप में सामने आता है। 'वियोग और मिलाप' में अंततः भारत मित्र के प्रयासों द्वारा अभिव्यक्ति के संघर्ष

में शासन के आतंक को पराजित किया गया है। निराश स्वराज्य–सभा के सदस्यों को भारत दास ने पत्र द्वारा भाषण का स्थान मिलने की सूचना दी– "मुझे मालूम हुआ है आपको इस समय लोकमान्य तिलक के व्यायान के लिए स्थान नहीं मिलता। अब आप स्थान की चिंता न कीजिए। आप बनमाली बाबू के अहाते में व्यायान कराएँ। उस अहाते को पंद्रह हज़ार रुपये पर मैंने नगर में एक बड़े शिल्प–विद्यालय की स्थापना के लिए खरीद लिया है।"[36] 'डिक्री के रुपये' में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करने वाले और राष्ट्रीय कर्तव्य पर सर्वस्व न्योछावर करने का हौसला करने वाले संपादक की पराजय को विजय में बदला गया है। प्रेमचंद को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने वाले संपादक की पराजय मंजूर न थी इसलिए अंत में नईम ने सच्चे दोस्त की भूमिका निभाई और कैलाश से डिक्री के रुपये लिए बिना ही रुपये मिलने की रसीद लिख दी।[37]

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार का हनन करने के लिए विदेशी साम्राज्यवादी सत्ता की आलोचना करने वाले प्रेमचंद ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान करने के लिए अंग्रेजों और यूरोपियनों की तारीफ भी की है। 'रंगभूमि' में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार को जीवित जातियों का अभिलक्षण और पराधीन तथा स्वाभिमान ाो चुकी जातियों के लिए भयकारक बताया गया है। प्रभु सेवक के पूना के राजनीतिक व्यायान के बाद उन्हें एक तार और एक पत्र मिलता है।। सेवक दल की प्रबंधकारिणी समिति द्वारा भेजे गए तार में लिाा था– "सेवक–दल की प्रबंध–कारिणी समिति आपके व्यायान को नापसंद करती है और अनुरोध करती है कि आप लौट आएँ वरना यह आपके व्यायानों की उत्तरदायी न होगी।"[38] सरकारी पत्र में एफ. विल्सन ने लिखा था– "माई डियर सेवक मैं नहीं कह सकता कि कल आपका व्यायान सुनकर मुझे कितना लाभ और आनंद प्राप्त हुआ। मैं यह अत्युक्ति के भाव से नहीं कहता कि राजनीति की ऐसी विद्वतापूर्ण और तात्विक मीमांसा आज तक मैंने कहीं नहीं सुनी थी। नियमों ने मेरी जबान बंद कर रखी है लेकिन मैं आपके भावों और विचारों का आदर करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह दिन जल्द आए जब हम राजनीति का मर्म समझें और उसके सर्वोच्च सिद्धांतों का पालन कर सकें। केवल एक ही ऐसा व्यक्ति है जिसे आपकी स्पष्ट बात असह्य हुई और मुझे बड़े दुःख और लज्जा के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि वह व्यक्ति यूरोपियन है। मैं यूरोपियन समाज की ओर से इस कायरतापूर्ण और अमानुषिक आघात पर शोक और घृणा प्रकट करता हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि समस्त यूरोपियन समाज को आपसे हार्दिक सहानुभूति है। यदि मैं उस नर–पिशाच का पता लगाने में सफल हुआ (उसका कल से पता नहीं है) तो आपको इसकी सूचना देने में मुझसे अधिक आनंद और किसी को न होगा।"[39] इन दोनों को पढ़कर प्रभु सेवक ने निष्कर्ष निकाला कि – "यह है जीवित जातियों की उदारता विशाल–हृदयता गुणग्राहकता! उन्होंने स्वाधीनता का आनंद उठाया है। स्वाधीनता के लिए बलिदान किए हैं और इसका महत्व जानते हैं। जिसका समस्त जीवन ुशामद और मुखापेक्षा में गुजरा हो वह स्वाधीनता का महत्व क्या समझ सकता है!"[40] प्रभुसेवक पराधीन जातियों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए तथाकथित स्वाधीन जातियों द्वारा उत्पीड़ित किए जाने को अपने मूल्यांकन में शामिल करते तो किसी और निष्कर्ष पर पहुंचते। मगर यह प्रेमचंद की सीमा नहीं है।

वे साम्राज्यवादी सत्ता और तानाशाही सत्ता दोनों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बाधक के रूप में बूबी पहचान रहे थे। उन्होंने 'रंगभूमि' (१९२५) के ही दौर में प्रकाशित 'कायाकल्प' (१९२६) में साम्राज्यवादी सत्ता द्वारा अभिव्यक्ति के अधिकार के चरम स्तर के हनन का उदाहरण दिया है। बेगुनाह चक्रधर को न्यायालय से सज़ा कम कर दिए जाने से चिढ़कर जेलर ने एक वर्ष में ही दस साल की कैद का मजा चााने के लिए एक अंधेरे कमरे में अकेले बंद कर पहले तो काम के अधिकार से वंचित कर दिया और फिर विचारों को अभिव्यक्ति करने के लिए कागज के टुकड़े के लिए भी तरसा दिया– "लेकिन लिाने का सामान कहाँ? बस यही एक ऐसी चीज थी जिसके लिए वह कभी–कभार विकल हो जाते थे। विचार को ऐसे अथाह सागर में डूबने का मौका फिर न मिलेगा और ये मोती फिर हाथ न आएँगे; लेकिन कैसे मिलें?"[41]

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार छीनने वाले साम्राज्यवादी और तानाशाही व्यवस्थाओं को प्रेमचंद वैयक्तिक से लेकर वैश्विक शांति और समृद्धि के लिए खतरा बता रहे थे। "नए राष्ट्र बन रहे हैं और राजनीतिक नए सिद्धांतों पर चलकर वे बलवान और संगठित भी हो जाएंगे लेकिन संसार में उनसे सुा और शांति में वृद्धि होगी इसमें सन्देह है। जहाँ शासन के विरोध में जबान खोलना बड़े से बड़ा अपराध है जिसकी सज़ा मौत है वहाँ शांति कहाँ? विचारों को शक्ति से कुचलकर बहुत दिनों तक शांति की रक्षा नहीं की जा सकती।"[42] प्रेमचंद ठीक निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राष्ट्रों का केवल राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होना आवश्यक नहीं है। यह जरूरी है कि नई सत्ता अपनी जनता के स्वतंत्र अभिव्यक्ति का हनन करने की चेष्टा न करे।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति प्रेमचंद की प्रतिबद्धता का पता उनके संपादकीय टिप्पणियों और समाचार पत्र में प्रकाशित आलेखों से भी चलता है। तमाम प्रतिबंध के बावजूद प्रेमचंद उद्धरणों समीक्षाओं एवं व्यंग्य का सहारा लेकर एवं कई बार कुछ न कहने की बात कहते हुए अपने विचारों को लगातार अभिव्यक्त कर रहे थे। वे अपने समाचार पत्र एवं अन्य समाचार पत्रों–पत्रिकाओं में प्रकाशित टिप्पणियों आलेों कहानियों आदि के द्वारा मानवाधिकार विरोधी गतिविधियों की लगातार आलोचना कर रहे थे। मसलन कलकत्ता कांग्रेस पर पुलिस बर्बरता को सर सैमुअल होर के गलत बताने पर प्रेमचंद अमेरिकन पादरी मिस्टर बैंकॉफ्ट के बंगाल गवर्नर के नाम लिखे पत्र को उद्धृत कर पुनर्विचार करने की मांग कर रहे थे। मगर इसके साथ ही इस उद्धरण के माध्यम से वे पुलिस द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के बर्बरतापूर्ण हनन को भी उजागर कर रहे थे– "हम उस पत्र का एक भाग यहाँ नकल करते हैं। "जब मैं पहुँचा तो कार्यवाई शुरु हो गई थी। कांग्रेस के स्त्री पुरुष उस समय शेड के अंदर ही थे। शेड के चारों तरफ सवार पुलिस और लाठी पुलिस ाड़ी थी। मैं भी उसी समूह में खड़ा हो गया। कई बार हमें निकल जाने का हुक्म दिया गया और हमारे बीच में घोड़े दौड़ाए गए। हम समझते थे कि शांतिमय जलसे को शांति के साथ देखने का हमारा हक है इसलिए हम कई बार लौट–लौटकर जलसे को देखते रहे। इसी बीच में पुलिस लारी आई। शेड के नीचे जो लोग थे उनमें से नौ–दस लाठीयों से मार–मारकर भगा दिए गए। मैंने ुद कई औरतों को बड़ी बेदर्दी से कंधे गरदन और पीठ पर लाठियाँ ाते देाा। उसके बाद कुछ लोग लॉरी में ढकेल दिए गए और एक आदमी जो उसकी पटरी पर ठोकर खाकर गिर पड़ा उसपर उठने के पहले बुरी तरह मार पड़ी।" पुलिस ने जो किया था बेजा था इस विषय में हमें कुछ नहीं कहना। गौवमेंट का राज्य है वो जो चाहे कर सकती है। कौन बोल सकता है।"[43] अभिव्यक्ति पर पाबंदी के कारण कुछ न बोल सकने और पत्रों की नकल करने वाले प्रेमचंद सरकार को सर्वशक्तिमान बताते हुए प्रकारांतर से निरंकुश और मानवाधिकार विरोधी साबित कर दे रहे थे।

राज्य सत्ता की ही तरह पारिवारिक सत्ता भी अपने सदस्यों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार सुनिश्चित कर सकती है या उससे वंचित कर सकती है। परिवार व्यक्ति के स्वतंत्रता समानता जीवन आदि के अधिकारों सहित तमाम मानवाधिकारों की गारंटी देने वाला प्राथमिक और सर्वाधिक सशक्त सामाजिक समूह है। ऐसे में पारिवारिक स्तर पर होने वाले मानवाधिकारों के हनन की

पहचान विडंबना की सृष्टि करता है। प्रेमचंद साहित्य परिवार में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन की विभिन्न स्थितियों को सामने लाता है। हिंदू परिवार में बहुत सी स्त्रियों को बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हासिल नहीं होती है। 'कर्मभूमि' में पितृसत्तात्मक चेतना वाला समरकांत और लालाधनीराम का परिवार स्त्रियों को अभिव्यक्ति का अधिकार नहीं देती है– "नैना न प्रसन्न थी न दुःखी थी। वह न कुछ कह सकती थी न बोल सकती थी। पिता की इच्छा के सामने वह क्या कहती। मनीराम के विषय में तरह–तरह की बातें सुनती थी–शराबी है व्यभिचारी है मूर्ख है घमंडी है लेकिन पिता की इच्छा के सामने सिर झुकाना उसका कर्तव्य था। अगर समरकान्त उसे किसी देवता की बलिवेदी पर चढ़ा देते तब भी वह मुंह न खोलती। केवल विदाई के समय वह रोई पर उस समय भी उसे यह ध्यान रहा कि पिताजी को दुःख न हो।"[44] पितृसत्तात्मक पारिवारिक चेतना में पली स्त्री अपनी अभिव्यक्ति की आजादी के लिए संघर्ष करने की सोच भी नहीं सकती है। इसके विपरीत वह पारिवारिक पुरुषों की इच्छा के विपरीत उठने वाले भावों को अभिव्यक्ति देने के बजाय दमित कर देना अपना कर्तव्य मान लेती है और यथासंभव उसका पालन करती है। १९३६ तक आते–आते प्रेमचंद मीनाक्षी के रूप में पितृसत्तात्मक चेतना वाले सामंती परिवारों में स्त्रियों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और अन्य मानवाधिकारों के हनन को स्वीकारने वाली नैना के विपरीत उसके खिलाफ सशक्त प्रतिरोध करने के लिए उठ ाड़ी होने वाली मीनाक्षी को गढ़ते हैं। 'गोदान' के उच्चवर्गीय जमींदार रायसाहब का परिवार भी लड़कियों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करने वाला परिवार है– "साधारण हिन्दू बालिकाओं की तरह मीनाक्षी भी बेजबान थी। बाप ने जिसके साथ ब्याह कर दिया उसके साथ चली गयी; लेकिन स्त्री–पुरुष में प्रेम न था। दिग्विजय सिंह ऐय्याश भी थे शराबी भी। मीनाक्षी भीतर ही भीतर कुढ़ती रहती थी।"[45] प्रेमचंद साहित्य जीवन और स्वतंत्रता के अधिकारों के लगातार हनन का परिणाम मीनाक्षी के प्रतिरोधात्मक रवैए के रूप में सामने लाते हैं जहाँ मीनाक्षी अपने पति को चाबुक तक लगाती है।

परिवार में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार के हनन के अन्य कारणों की ओर भी प्रेमचंद साहित्य की नजर गई है। 'रंगभूमि' में सोफिया की तार्किक चेतना ईसाई धर्म की आँा मूँदकर अनुसरण करने वाली मिसेज सेवक को पसंद नहीं आती है और। अपनी ही बेटी को विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अडिग रहने की सज़ा आश्रय का अधिकार छीनने के रूप में देती है। सोफिया और मिसेज सेवक का संवाद पारिवारिक स्तर पर धार्मिक कारणों से होने वाले अभिव्यक्ति और अन्य मानवाधिकार उल्लंघनों का प्रमाण है–

"सोफ़िया– महात्मा ईसा के प्रति कभी मेरे मुँह से कोई अनुचित शब्द नहीं निकला। मैं उन्हें धर्म त्याग और सद्विचार का अवतार समझती हूँ! लेकिन उनके प्रति श्रद्धा राने का यह आशय नहीं है कि भक्तों ने उनके उपदेशों में जो असंगत बातें भर दी हैं या उनके नाम से जो विभूतियाँ प्रसिद्ध कर रही हैं उन पर भी ईमान लाऊँ! और यह अनर्थ कुछ प्रभु मसीह ही के साथ नहीं किया गया संसार के सभी महात्माओं के साथ यही अनर्थ किया गया है।

मिसेज सेवक– तुझे ईश्वर– ग्रंथ के प्रत्येक शब्द पर ईमान लाना पड़ेगा वरना तू अपनी गणना प्रभु मसीह के भक्तों में नहीं कर सकती।

सोफ़िया– तो मैं मजबूर होकर अपने को उनकी उम्मत से बाहर समझूंगी; क्योंकि बाइबिल के प्रत्येक शब्द पर ईमान लाना मेरे लिए असम्भव है!

मिसेज सेवक– तू विधर्मिणी और भ्रष्टा है। प्रभु मसीह तुझे कभी क्षमा न करेंगे!

सोफ़िया– अगर धर्मिक संकीर्णता से दूर रहने के कारण ये नाम दिए जाते हैं तो मुझे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।"[46]

मिसेज सेवक विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अडिग रहने वाली बेटी को सज़ा सुनाते हुए उसके आश्रय का अधिकार छीन लेती हैं– "प्रभु मसीह से विमुख होनेवाले के लिए इस घर में जगह नहीं है।"[47]

विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता विरोधी सोच सामंती चेतना में पैवस्त होने का पता सोफिया के संबंध में राजा महेंद्र सिंह और रानी जाह्नवी द्वारा प्रकट किए गए विचारों से भी चलता है। अपनी स्त्री इंदू के विचार और अभिव्यक्ति को बेड़ियों में जकड़े राने वाला राजा महेंद्र सिंह सहेली सोफिया को अपने साथ रहने के लिए कुछ दिन ले चलने के प्रस्ताव को नामंजूर करते हुए कहता है– "महेंद्र– वह देवी सही; लेकिन ऐसे कितने ही कारण हैं कि मैं उनका तुम्हारे साथ जाना उचित नहीं समझता हूँ। तुममें यह बड़ा दोष है कि कोई काम करने से पहले उसके औचित्य का विचार नहीं करतीं। क्या तुम्हारे विचार में कुल–मर्यादा की अवहेलना करना कोई बुराई नहीं? उनके घरवाले यही तो चाहते हैं कि वह प्रकट रूप से अपने धर्म के नियमों का पालन करें। अगर वह इतना भी नहीं कर सकतीं तो मैं यही कहूँगा कि उनका विचार– स्वातंत्र्य औचित्य की सीमा से बहुत आगे बढ़ गया है।"[48] रानी जाह्नवी भी इंदू के अपने पति महेंद्र द्वारा छोटी सी बात को भी अस्वीकार करने पर सवाल उठाने की बात पर सती स्त्री का धर्म समझाती है जिसका अर्थ प्रकारांतर से अपनी विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार के हनन को पूरी तरह स्वीकार करना ही था। साथ ही उसकी विचार स्वतंत्रता के लिए सोफिया का ताना देती है– "...मैं तुम्हें पति–परायणा सती देखना चाहती हूँ जिसे अपने पुरुष की आज्ञा या इच्छा के सामने अपने मानापमान का जरा भी विचार नहीं होता। अगर वह तुम्हें सिर के बल चलने को कहें तो भी तुम्हारा धर्म है कि सिर के बल चलो। तुम इतने में ही घबरा गईं?...चुप रहो मैं तुम्हारे मुँह ऐसी बातें नहीं सुन सकती। मुझे भय हो रहा है कि कहीं सोफी के विचार– स्वातंत्र्य का जादू तुम्हारे ऊपर भी तो नहीं चल गया!"[49]

निष्कर्ष रूप में हम पाते हैं कि प्रेमचंद साहित्य अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार को मानवाधिकारों के प्रहरी के रूप में देखता है। साम्राज्यवादी सत्ता अपनी रक्षा के लिए इस प्रहरी को सबसे पहले कैद करती है। किसी भी जाति को मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने का रास्ता अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सुनिश्चित होने के साथ सरल हो जाती है। परिवार भी कई स्थितियों में अपने सदस्यों के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार अनिश्चित बनाता है। पितृसत्तात्मक परिवारों में स्त्रियों के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन की संभावना अधिक होती है। सामंती और जमींदारी परिवार में पुरुष वर्चस्व में स्त्रियों की अभिव्यक्ति का अधिकार के लिए लड़ने की संभावना भी बहुत कम रहती है। प्रेमचंद साहित्य अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के हनन के बीच उसे सुनिश्चित करने के लिए संघर्ष करने का और उसके सुनिश्चित होने का स्वप्न भी देाता है। वह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के सहारे मानवाधिकारों को सुनिश्चित होने का उदाहरण प्रस्तुत कर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के महत्व को स्थापित करता है।

संदर्भ

1. कमल किशोर गोयनका(सं.)– प्रेमचंद कहानी रचनावली भाग१ पृ ६८
2. वही भाग–३ पृ ३९३
3. वही भाग–३ पृ ३९६
4. वही भाग–३ पृ ३९७
5. वही भाग–३ पृ ३९९
6. वही भाग–३ पृ ४००
7. गबन पृ १३२

8. कमल किशोर गोयनका(सं.)– प्रेमचंद कहानी रचनावली भाग २ पृ १५६
9. वही भाग २ पृ १५७
10. वही भाग २ पृ १६१
11. वही भाग २ पृ १६३–१६४
12. वही भाग–३ पृ ४३६
13. वही भाग–३ पृ ४३६
14. वही भाग–३ पृ ४५६
15. वही भाग–३ पृ ४५६
16. वही भाग–३ पृ ४३६
17. वही भाग–३ पृ ४३७
18. वही भाग–३ पृ ४६७
19. प्रेमचंद– आजादी की लड़ाई प्रेमचंद के विचार–१ पृ–३६
20. प्रेमचंद– मशीनगन और शांति वही पृ–४५
21. प्रेमचंद– नया प्रेस बिल वही पृ–७५
22. कमलकिशोर गोयनका(सं.)– प्रेमचंद कहानी रचनावली भाग–५ पृष्ठ २३३
23. वही भाग–५ पृष्ठ २५८
24. वही भाग–५ पृष्ठ २५८
25. वही भाग–५ पृष्ठ ३५१
26. वही भाग–५ पृष्ठ ३५१
27. वही भाग–५ पृष्ठ ३५१
28. वही भाग–६ पृष्ठ ३४४
29. वही भाग–६ पृष्ठ ३००–३०१
30. वही भाग–६ पृष्ठ ४०२
31. वही भाग–६ पृष्ठ ४०५–४०६
32. वही भाग–६ पृष्ठ ४०५–४०६
33. वही भाग–६ पृष्ठ ४०६
34. वही भाग–६ पृष्ठ ४०८–४०६
35. रंगभूमि पृ २४७
36. कमल किशोर गोयनका(सं.)– प्रेमचंद कहानी रचनावली भाग २ पृ १६५
37. वही भाग–३ पृ ४०१
38. रंगभूमि पृ ३८४
39. वही पृ ३८४–३८५
40. वही पृ ३८५
41. कायाकल्प पृ १६३
42. प्रेमचंद– नवयुग प्रेमचंद के विचार–१ पृ–६३
43. प्रेमचंद– अमेरिकन पादरी का पत्र गवर्नर बंगाल के नाम वही पृ–१६४–१६५
44. कर्मभूमि पृ १८८
45. गोदान प ३५६
46. रंगभूमि पृ २६
47. वही पृ २६
48. वही पृ ७७
49. वही पृ १०६